

हिन्दुस्तान

स्टिंग के सबक

‘कोबरापोस्ट’ के बाबरी ढहाने के मामले में किए गए स्टिंग ऑपरेशन से भारतीय जनता पार्टी को थोड़ी-बहुत असुविधा होगी। इस स्टिंग ऑपरेशन में फंसे सभी लोग संघ परिवार से जुड़े हुए हैं, इसलिए भाजपा को कुछ सफाई देनी होगी। ऐसे में, भाजपा इस स्टिंग में बाहर आई बातों की बजाय चुनावी माहौल में इसके आने को मुद्दा बना रही है कि यह भाजपा के खिलाफ राजनीतिक षड्यंत्र है। स्टिंग में जो बातें आई हैं, उनका खंडन इसलिए खतरनाक है कि अगर पूरी तरह सच न हों, तब भी ये बातें सच के करीब हैं, इसलिए इसे पहली नजर में फर्जी कह देना गड़बड़ हो सकता है। लेकिन भाजपा को इससे बहुत ज्यादा दिक्कत नहीं होगी, इसकी एक वजह तो यह है कि बाबरी मस्जिद विध्वंस को 20 साल गुजर चुके हैं, दूसरे जो लोग उस कांड में महत्वपूर्ण थे, वे अब बहुत प्रासंगिक नहीं रहे हैं। जिन लोगों के इंटरव्यू कोबरापोस्ट ने किए हैं, वे भाजपा और संघ की राजनीति में अब हाशिये पर जा चुके हैं। चाहे आर्थिक विकास हो या हिंदुत्व, अब संघ रिविार के एकमात्र नायक नरेंद्र मोदी हैं और उनके समर्थकों को इस तरह के रहस्योद्घाटन से कोई खास फर्क नहीं पड़ता। यह अलबत्ता धुमकिन है कि अल्पसंख्यकों के मन में नरेंद्र मोदी के नेतृत्व में भाजपा के प्रति जो दुराव है, वह और बढ़ जाए।

चाहे अशोक सिंघल हों या आचार्य धर्मेन्द्र या उनके अन्य साथी, उन लोगों ने इस कथित स्टिंग में जो कुछ कहा है, उसमें आश्चर्यजनक कुछ नहीं है। पिछले 20 साल में आम जनमानस को यह समझ में आ गया है कि बाबरी मस्जिद विध्वंस को लेकर संघ परिवार का जो आधिकारिक पक्ष है, वह सच नहीं है। लिबाहन आयोग की रपट में भी यह बात आई है कि बाबरी मस्जिद का गिरना अचानक नहीं हुआ था, इसके पीछे संघ परिवार से जुड़े कई लोगों की सुनियोजित साजिश थी। यह स्टिंग ऑपरेशन इसी बात को पुष्ट करता है। इस स्टिंग में जिनसे बात की गई है, वे लोग अब आम तौर पर अप्रासंगिक हो गए हैं और राममंदिर का मुद्दा भाजपा के लिए भी बहुत महत्वपूर्ण नहीं रह गया है। हो सकता है कि अप्रासंगिक हो जाने के एहसास ने कुछ लोगों को बड़-चढ़कर बातें करने को मजबूर कर दिया हो। बल्कि ये सब बातें कहलवाने के लिए स्टिंग करना भी जरूरी नहीं था, ये लोग शायद खुलेआम भी ये बातें कह देते। जो राममंदिर बनाना इन लोगों के जीवन का सबसे बड़ा लक्ष्य रहा था, जिसके लिए उन्होंने इतना बड़ा आंदोलन खड़ा किया और स्वतंत्र भारत का सबसे ज्यादा चर्चित विध्वंस किया, उस आंदोलन के कहीं न पहुंचने और राममंदिर की लगभग कोई उम्मीद न होने से इनके पास अपनी कथित वीरता की गाथा कुछ नमक-मिर्च लगाकर सुनाने के अलावा अब और क्या बचा है?

भाजपा इस वक्त देश की दूसरी सबसे बड़ी पार्टी है और हो सकता है कि इस लोकसभा चुनाव में वह कांग्रेस से ज्यादा सीटें हासिल कर ले और सबसे बड़ी पार्टी बन जाए। अभी तो चुनावी वजहों से उसे इस स्टिंग को राजनीतिक षड्यंत्र बताना जरूरी है और यही किया भी जा रहा है। लेकिन यह प्रसंग इस बात का भी प्रमाण है कि राजनीतिक फायदे के लिए उग्र विचारों और तत्वों के खेलने के कितने गंभीर परिणाम हो सकते हैं। इस प्रकरण के केंद्र में लालकृष्ण आडवाणी रहे थे, जो अब तक 6 दिसंबर को अपने जीवन का सबसे दुखद दिन बताते हैं। आडवाणी तो अब भाजपा में हाशिये पर खिसक गए हैं, लेकिन भाजपा के लिए इस प्रकरण के सबक आज भी प्रासंगिक हैं। वह भी उस समय, जब राममंदिर का मुद्दा भाजपा के एजेंडे से गायब हो चुका है।

विदेशी अखबार से

अफगानिस्तान में चुनाव

क्या हम अफगानिस्तान के नागरिक को अपने जैसा बना सकते हैं? यह सवाल अब भी कायम है, जबकि 12 साल पहले अमेरिका व सहयोगी अफगानिस्तान में घुसे थे और अल-कायदा व तालिबान को परास्त करने तथा अफगानिस्तान को एक अलग समाज में बदलने का फैसला किया था। चुनाव, महिला-अधिकार, शिक्षा, आर्थिक विकास, पश्चिम जैसा कानून-तंत्र, टेलीविजन, मोबाइल फोन, नई फौज, नई पुलिस-व्यवस्था, यहां तक कि धारावाहिक की, काफी कुछ नया है आज के अफगानिस्तान में। रूसी लोगों ने भी 20 साल पहले आधुनिकीकरण की कोई अलग प्रक्रिया वहां नहीं अपनाई थी। यहां तक कि 19वीं सदी में ब्रिटेन के लोगों का विचार था कि वे अफगानिस्तान को उसी तरह बदल सकते हैं, जैसा कि उन्होंने कई देशों को बदला। लेकिन अफगानिस्तान की मिट्टी पर काम करना काफी मुश्किल है और जिसने भी प्रयास किए, उनके काम की रफतार धीमी थी और वे हुनरमंद नहीं थे। विफलताओं, गलतियों theguardian

और त्रासदियों को अच्छी तरह से दिखाया-बताया जा सकता है। जनरल, राजदूत, उच्च प्रतिनिधि, सहायक और विशेष राजनयिक आए और चले गए। नाटो के कई सैनिक मारे गए। इनमें 448 ब्रिटिश थे। कई तालिबान डेर हुए और अफगान नागरिकों की भी मौतें हुई। अफगानिस्तान से विदेशी फौजियों की बड़ी तादाद चली जाएगी। इस साल के अंत तक अमेरिकी सैनिक निकल जाएंगे। डेविड कैमरन पहले ऐसे नेता नहीं हैं, जिन्होंने इस सच्चाई को स्वीकारा कि अफगानिस्तान से ब्रिटिश बिना उस कार्यालयी के लौट रहे हैं, जिसके बारे में सोचा गया था। आज अफगानिस्तान में राष्ट्रपति का चुनाव है। उम्मीद है कि मतदान प्रतिशत अधिक रहेगा। गड़बड़ी की आशंकाएं हैं, पर इसके स्तर को मापना मुश्किल होगा, क्योंकि तालिबान ने विदेशी पर्येक्षकों को धमकी दे रखी है। वैसे अच्छी बात यह है कि प्रमुख उम्मीदवार भरोसेमंद और चर्चित चेहरे हैं। यहां तक कि उपराष्ट्रपति पद के लिए एक महिला उम्मीदवार भी है। बाहरी लोगों ने तो अफगानिस्तान को बदला या बदलने का दावा किया, देkhना यह है कि क्या अफगानी खुद को बदल पाए हैं।

द गार्शियन, ब्रिटेन

75 साल पहले

हिन्दुस्तान
hindustan
लाला हरदयाल
यदि यह समाचार ठीक है कि सुप्रसिद्ध क्रांतिकारी विद्वान लाला हरदयाल जी का ४ मार्च को अमेरिका के न्यूयार्क शहर में देहावसान हो गया है, तो यह अत्यंत दुखपूर्ण समाचार है। जब देशवासी बीस सालों के निर्वासन के बाद उनके स्वदेश लौटने की प्रतीक्षा में थे, तब यह समाचार मिलना और भी अधिक दुखपूर्ण है। इससे भी अधिक खेदजनक तो यह है कि इस समाचार का पता देश में पूरे एक मास बाद चला है और वह भी एक निजी पत्र से। सोरे संसार के समाचारों का व्यापार करने वाली रूटर एजेंसी ने इस समाचार को इस देश में पहुंचाना जरूरी नहीं समझा। लाला हरदयालजी इस आभासे देश में पैदा हुए हैं, जिसमें स्वदेशा भक्ति पाप माना जाता रहा है और उसके लिए निर्वाचन की सजा दी जाती रही है। लेकिन, ऐसे देशभक्तों के नामों को देशवासियों की स्मृति से मिट्ट देने की कोशिश का किया जाना कितना निंदनीय है, यह बताने की जरूरत नहीं। हिन्दुस्तानी देशभक्तों के प्रति विदेशी समाचार एजेंसियों का ऐसा ही व्यवहार है और इसकी जितनी निन्दा की जा सके, कम है। लाला हरदयालजी जितने बड़े देशभक्त थे, उतने ही बड़े विद्वान भी थे। लगभग डेढ़ दर्जन भाषाओं पर आपका अधिकार था।ऐसे विद्वान और देशभक्त का अज्ञात व्यक्ति के समाने चल बसना कितना खेदजनक है?

5 अप्रैल, 1939 को प्रकाशित सामयिक-चर्चा के अंग

क्यों महत्वपूर्ण हैं महिला मतदाता

हाल के विधानसभा चुनावों में महिला मतदान का प्रतिशत बढ़ना यह बताता है कि चुनाव और चुनावी प्रक्रिया में महिलाएं अधिक सक्रिय हुई हैं।

सर्वेक्षण के आंकड़ों पर अगर यकीन करें, तो शायद ही भारतीय चुनाव में कहीं महिला वोटों की मौजूदगी दिखती है। महिलाएं शायद ही महिलाओं की तरह मतदान करती हैं। शायद ही वे किसी राजनीतिक दल को विशेष वरीयता देती हैं, यहां तक कि उन दलों को भी नहीं, जिनकी अध्यक्ष महिला नेता हैं। जे जयललिता, ममता बनर्जी और

मायावती, इनमें से कोई भी महिला वोटरों को अपनी ओर आकर्षित करने में सक्षम नहीं हो सकी हैं। साल 2009 के लोकसभा चुनाव में जयललिता की अन्नाद्रमुक पार्टी ने अपने सहयोगियों के साथ तमिलनाडु में 37 फीसदी मत हासिल किए। इस पार्टी को 37 प्रतिशत पुरुषों और 38 प्रतिशत महिलाओं के मत मिले। इसी तरह, पश्चिम बंगाल में तृणमूल कांग्रेस अपनी सहयोगी कांग्रेस के साथ कुल मतदान के 45 प्रतिशत वोट बटोर पाई। उसे 46 प्रतिशत पुरुष मतदाताओं और 43 प्रतिशत महिला मतदाताओं के वोट मिले। उत्तर प्रदेश में मायावती के नेतृत्व में बहुजन समाज पार्टी ने 2009 के लोकसभा चुनाव में 27 प्रतिशत वोट प्राप्त किए। इनमें से 28 प्रतिशत पुरुष और 27 प्रतिशत महिलाएं थीं।

पिछले साल राज्यों के हुए चुनावों में भी महिला मतदाताओं की विशेष वरीयता का कुछ पता नहीं चला था। हालांकि, यह रुझान अब बल्लंता हुआ दिख रहा है। हाल में हुए सर्वेक्षण बताते हैं कि इस बार पश्चिम बंगाल में महिला मतदाताओं का झुकाव ममता बनर्जी की तरफ अधिक है। इसी तरह, तमिलनाडु में जयललिता और उत्तर प्रदेश में मायावती के पक्ष में इनका झुकाव ज्यादा है। ये सर्वेक्षण सेंटर फॉर द स्टडी ऑफ डेवलपिंग सोसाइटीज द्वारा कराए गए हैं।

न सिर्फ यह रुझान तेजी से बढ़ा है, बल्कि महिला मतदाताओं की कमान

डी. श्रीनिवास

नशतर

इन दिनों आज तक अमी अमी

अगले महीने जिसकी चुनावी इज्जत लुट जाएगी, वह मुआवजे को रोएगा।

ये दिन राजनीति की लाज लुटने के दिन हैं। चुनावी तृतियां बोले रही हैं। नक्करो गुम हैं। इन दिनों किए गए पाप को खुदा भी माफ कर देता है। इन दिनों सांप डसना स्थगित कर देते हैं। अजगर चाकरी करने लगते हैं, उनका प्लेसमेंट भी बहुत अच्छा होता है। फिलहाल अपराधियों के मुंह तौलियों से ढके हुए नहीं हैं। अगले महीने जिसकी चुनावी इज्जत लुट जाएगी, वह मुआवजे को रोएगा।

इन दिनों हर उम्मीदवार वादों के विस्फोटकों से लला एक टुक है। वादे फटे, तो ध्वजियां उड़ जाएंगी। जिसे इन दिनों खाने कमाने को नहीं मिलता, वह जनहित याचिका दायर न करे, तो क्या करे? इन दिनों जब लानतों, कोसनों,

लेखक मंच में अनुराग

साइबर संसार

शिक्षा क्यों नहीं है मुद्दा

देश की हर छोटी-बड़ी पार्टी तरह-तरह के लोक-लुभावन वादों के साथ मतदाताओं के बीच है। राजनेता एक-दूसरे पर आरोप लगाते के साथ ही तरह-तरह के वादे कर रहे हैं, लेकिन शिक्षा के सवाल पर सभी चुपभी साधे हुए हैं। किसी भी दल के मुख्य एजेंडे में यह नहीं है कि बच्चों को कैसी शिक्षा देनी चाहिए और किस तरह का ढांचा तैयार किया जाए। व्यवस्था में जो खामियां हैं, उन्हें कैसे दूर किया जाए और कैसे समान शिक्षा की ओर हम बढ़ सकते हैं? आम जनता के बीच भी यह चुनावी मुद्दा नहीं है।

हमारे बुद्धिजीवी न जाने किन-किन मुद्दों को उछाल रहे हैं, लेकिन शिक्षा पर वे भी बात नहीं कर रहे! निजीकरण की सुगामी सरकारी शिक्षा व्यवस्था को लौलने पर आमादा है। पीपीपी मॉडल अर्थात पब्लिक-प्राइवेट पार्टनरशिप के चोर दरवाजे से एक के बाद दूसरे शिक्षण संस्थान व्यावसायिक घरानों को सौंपे जा रहे हैं। इससे शिक्षा लगातार महंगी होती जा रही है। गली-गली में खुले निजी स्कूलों में पूरी शिक्षा व्यवस्था प्रबंधन की मनमर्जी पर निर्भर करती है। कौन-सी किताबें पाठ्यक्रम में लगेंगी, शिक्षकों की नियुक्ति, स्कूल में बच्चों को दाखिला देने का मापदंड, स्कूल की फीस व वार्षिक शुल्क आदि के लिए प्रबंधन कौन-से तौर-तरीके अपनाने हैं, सम्प्रज्ञा मुश्किल है। ऐसे में, इन स्कूलों में कैसी शिक्षा बच्चों को मिल रही है, इसका सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। इतना सब होने के बाद भी शिक्षा का चुनाव में मुद्दा न बनना बेचैनी उत्पन्न करता है।

लेखक मंच में अनुराग
मेल बॉक्स
जाकी रही भावना जैसी
‘जाकी रही भावना जैसी, प्रभु मूर्त तिन देखहि तैसी।’ जो व्यक्ति स्वयं जैसा होता है, उसे दूसरे भी अपने जैसे नजर आते हैं। व्यक्ति की पहचान के बारे में अंग्रेजी में भी दो कहावतें प्रचलित हैं- ‘अ मैंन इज नोन बाइ हिज ड्रेस एंड एंड्रेस (आदमी अपने पहनावे और बोलचाल से जाना जाता है) तथा ‘अ मैंन इज नोन बाइ हिज वर्क एंड कन्डक्ट (अर्थात आदमी अपने कार्य व आचरण से पहचाना जाता है)। लोकसभा चुनाव के लिए जनता को एक कसौटी पर स्वयं निर्णय लेना है कि कौन उम्मीदवार खरा है और कौन खोटा?
राम कुमार शर्मा, सहारनपुर, उत्तर प्रदेश
धर्म के बिना देश?
पिछले दिनों उदय प्रकाश अरोड़ा का

इन दिनों तो हर पार्टी का रावण पेट ढके है कि कहीं अमृत से मरी नाभि न दिख जाए।

इन्हीं दिनों भारत माता रो रही हैं और चुनाव आयोग चुनावी उम्मीदवारों की तरफ शारा करके उसे समझा रहा है कि- मत रो माता लाल तरे बहुतेरे। आधी मई तक भारत भाग्य विधाता अवतरित हो जाएगा। खाली सिंहासन भर जाएंगे। इन दिनों तो हर पार्टी का रावण पेट ढके है कि कहीं अमृत से भरी नाभि न दिख जाए। हर पार्टी के विभीषण खी-खी करके हंस रहे हैं कि बड़े भइया दाईं से पेट नहीं छिपता। खैर यह सब छोड़िए। इतना तय है कि नई सरकार के आने के बाद ध्रष्टाचार नंगा धूमेगा।

उर्मिल कुमार थपलियाल

मनसा ताचा कर्मणा

पराई पीर के लिए

अपनी जय-सी तकलीफ बहुत बड़ी लगती है, जबकि दूसरे की जानलेवा समस्या भी बुलबुलता। यह स्वाभाविक भी है। अधिकांश लोग अपने पेशानी में धैर्य छो बैठते हैं, सोचने-समझने की शक्ति गंवा देते हैं। ऐसे समय में यदि कोई व्यक्ति दूसरे की पीड़ा सुलझाने का प्रयास करे, तो इससे न केवल समस्या हल होती है, बल्कि हल करने वाले व्यक्ति की विचार क्षमता में भी वृद्धि होती है। अपनी पेशानी में व्यक्ति हल ढूंढ़ने की बजाय नकारात्मक सोच का शिकार बनता है। जिससे समस्या सुलझने की बजाय और उलझती है, व पेशानी भी बढ़ती है। मनोवैज्ञानिकों का मानना है कि ‘जब व्यक्ति दूसरे की समस्याओं को हल करने का प्रयास करता है, तब उसके दिमाग में एंडॉरफिन केमिकल का स्राव होता है, जो दिमाग को ऊर्जावान बनाता है।’ ऐसा तभी संभव होता है, जब व्यक्ति समस्या को सुलझाने के लिए सकारात्मक दृष्टिकोण से सोचे। अक्सर दूसरे की पेशानी स्वयं के लिए पीड़ादायक नहीं होती। *पॉजिटिव एडिक्शन* पुस्तक के लेखक विलियम ग्लॉसर भी इस बात को मानते हैं। उनका कहना है कि, ‘हमें हमेशा याद रखना चाहिए कि कभी भी दूसरे की पीड़ा खुद महसूस नहीं की जा सकती।’ लेकिन दूसरे की पीड़ा को दूर करके अपने व्यक्तित्व को भी बेहतर तरीके से संवार सकते हैं। किसी व्यक्ति की मुसीबत में मदद करने से स्वयं को एक आंतरिक सुख की अनुभूति होती है। पेशान व्यक्ति कई बार मानसिक रूप से इतने त्रस्त हो जाते हैं कि वे आत्महत्या तक कर लेते हैं। वैज्ञानिक शोधों ने इस बात को साबित किया है कि लगभग 90 प्रतिशत आत्महत्ता अपनी मृत्यु के समय गहन पेशानी और पीड़ा के दौर से गुजर रहे होते हैं। ऐसे में, उनकी पेशानी को दूर करने के लिए यदि कुछ हाथ आगे बढ़ जाएं, तो न केवल कीमती जीवन बचाता है, अपितु मददगार व्यक्ति को अपना जीवन सार्थक लगता है। ऐसी संतुष्टि ही तो सफल जीवन का सार है।

रेजू सेनी

इन दिनों तो हर पार्टी का रावण पेट ढके है कि कहीं अमृत से मरी नाभि न दिख जाए।

इन्हीं दिनों भारत माता रो रही हैं और चुनाव आयोग चुनावी उम्मीदवारों की तरफ शारा करके उसे समझा रहा है कि- मत रो माता लाल तरे बहुतेरे। आधी मई तक भारत भाग्य विधाता अवतरित हो जाएगा। खाली सिंहासन भर जाएंगे। इन दिनों तो हर पार्टी का रावण पेट ढके है कि कहीं अमृत से भरी नाभि न दिख जाए। हर पार्टी के विभीषण खी-खी करके हंस रहे हैं कि बड़े भइया दाईं से पेट नहीं छिपता। खैर यह सब छोड़िए। इतना तय है कि नई सरकार के आने के बाद ध्रष्टाचार नंगा धूमेगा।

लोकतांत्रिक चेतना को भारतीय समाज में विकसित करने में जिन लोगों का योगदान है, उनमें बाबू जगजीवन राम का नाम अगली कतार में आता है। उनकी स्पष्ट राय थी कि भारतीय समाज में वर्ण व्यवस्था और लोकतंत्र साथ-साथ नहीं रह सकते। इसलिए वह हमेशा वर्ण व्यवस्था के विरुद्ध संघर्ष करते रहे। आजादी के बाद बने नए राजनीतिक ढांचे के भीतर पुरानी सामाजिक संकीर्णताएं मौजूद थीं। जगजीवन राम की अंतर्दृष्टि इस सच्चाई को भली प्रकार देख रही थी। राजनीतिक नारे और व्यक्तिगत आचरण का यह भेद बाबू जगजीवन राम को वैसे ही पेशान करता था, जैसे कथनी और करनी का भेद संतों को पेशान करता था। वे भारतीय चिंतन परंपरा की गहरी समीक्षा के बाद इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि भारतीय समाज में आदर्श चाहे जितने भी बड़े और महान क्यों न रहे हों, व्यावहारिक धरातल पर उन आदर्शों को मूर्त रूप नहीं दिया जा सका है।

जगजीवन राम देख रहे थे कि ‘सामाजिक धरातल पर बड़े और छोटे का भाव, जो समाजवाद तो क्या जनतंत्र का भी बैरी है, हर जगह दिखता है।’ एक तरह से यह मानसिक व्याधि बन गया है। हमारे सामाजिक व्यवहार इसी व्याधि से निर्धारित होते हैं। उनका कहना था, ‘यह भाव हमारे हृदय के उन अदृश्य तहों में है, जहां से हमारे व्यवहारों का निर्माण होता है। यह भाव मजजागत संस्कार का रूप ले चुका है। एक ब्राह्मण या राजपूत एक बर्निए की दुकान में

लोकमानों, सर्वगों और पिछड़ों के लिए कई लुभावने वादे किए हैं, तो वहीं कांग्रेस ने अपने पूर्व के घोषणापत्र को दोहराया है, जिसमें स्वास्थ्य, शिक्षा, रोजगार प्रमुख हैं। भले ही ये घोषणापत्र अभी बातों में हैं, लेकिन अगर इन पर ईमानदारी से अमल हुआ, तो निश्चय ही भारत विकास की नई ऊंचाियों को छूएगा।

संतोष कुमार
पूर्वी खुर्द, वाराणसी

बाहरी, बागी और दागी
जब भी कोई चुनाव होता है, तो ये शब्द- बाहरी, बागी या दागी बहुत सुनने-पढ़ने को मिलते हैं, लेकिन

रही है, तब भी उनके पास महिला मतदाताओं को लुभाने की दमदार वजहें हैं। अधिकतर संसदीय क्षेत्रों में महिला मतदाताओं की तादाद 50 फीसदी या इससे थोड़ी ही कम है। अगर हिस्सेदारी का स्तर एक मुद्दा है, तो युवा मतदाताओं की तुलना में महिला मतदाताओं का मत-प्रतिशत काफी अधिक होता है। साफ है, युवाओं की अपेक्षा महिला मतदाता किसी राजनीतिक पार्टी की चुनावी सफलता में अहम भूमिका निभा सकती हैं। विडंबना यह है कि जब राजनीतिक पार्टियों को महिला मतदाताओं की लामबंदी की अधिक कोशिशें करनी चाहिए थीं, तब उन्होंने टिकट बांटने उन्हें नजरअंदाज कर दिया।

वैसे, आम चुनाव के लिए राजनीतिक पार्टियां अब भी अपने उम्मीदवार तय कर रही हैं, लेकिन टिकट बंटवारे के पुराने तरीके यह साफ कर देते हैं कि महिला उम्मीदवारों को किसी भी पार्टी की तरफ से समुचित हिस्सेदारी नहीं मिली है। इस बार के लोकसभा चुनाव के लिए बहुत कम महिला उम्मीदवारों का पर्चा भरना कोई अनोखी बात नहीं है। राजनीतिक पार्टियों ने पहले के चुनावों में भी यही रूढ़िवादी सोच अपनाई है।

राजनीतिक पार्टियां, अक्सर महिलाओं को टिकट न देने की कई वजहें गिनाती रहती हैं। उनमें सबसे आम बहाना तो यह है कि महिला उम्मीदवारों में चुनाव जीतने की क्षमता की कमी होती है। लेकिन जमीनी स्तर पर यह कोई कारण नहीं हो सकता। 2004 और 2009 के लोकसभा चुनावों के नतीजे संकेत देते हैं कि महिलाओं में चुनाव जीतने की क्षमता पुरुषों से अधिक है। दरअसल, महिला नेताओं को टिकट न देने का मूल कारण यह है कि राजनीतिक पार्टियां उन्हें वोट बैंक के रूप में नहीं देखती हैं। साथ ही, वे मानती हैं कि महिला उम्मीदवार पार्टी के पक्ष में औरतों को लामबंद नहीं कर सकतीं। कोई भी पार्टी यह यकीन नहीं करती कि चुनाव के मैदान में यदि महिला उम्मीदवार उतरती है, तो उसे महिलाएं वोट देंगी ही। लेकिन अब बदलाव के पर्याप्त संकेत मिल रहे हैं। महिला नेतृत्व वाली राजनीतिक पार्टियों के प्रति देश की महिलाओं का झुकाव बढ़ा है। यह कौन जानता है कि महिलाएं वास्तव में यही चाहती हों कि वे बड़ी संख्या में महिला उम्मीदवारों के पक्ष में वोट डालें?

हाल के विधानसभा चुनावों में महिला मतों का प्रतिशत बढ़ना यह संकेत है कि चुनाव और चुनावी प्रक्रिया में महिलाएं अधिक सक्रिय हुई हैं। अब इसके आगे यह राजनीतिक पार्टियों के ऊपर है कि वे बदलाव की पहल करें।

(ये लेखक के अपने विचार हैं)

नजरिया

लोकतांत्रिक चेतना के कीमियागर थे बाबूजी

जगजीवन राम के लिए जाति के खिलाफ संघर्ष अस्मिता नहीं, राष्ट्रीयता के दायरे में जरूरी था।

सदानंद शाही
प्रोफेसर, काशी हिंदू विश्वविद्यालय

दरवानी करता हुआ भी हृदय में यह अनुभव करता है कि वह मालिक से श्रेष्ठ है।... ऐसी मानसिक दासता पाश में बंधे गुलाम, आजाद कैसे हो सकते हैं? यह दासता जिस तरह बड़ों को गिराती है, उसी तरह तथाकथित छोतों को भी।’

जगजीवन राम इस भयावह सामाजिक सच्चाई का समाधान बुद्ध के चिंतन और महात्मा गांधी के प्रयोग में देखते हैं। बुद्ध और गांधी, दोनों ने ही चिंतन, वाणी, आचरण की पवित्रता और एकरूपता के बड़गुन का आशीर्मान था। आजादी के रूप में हुआ आधुनौतिक परिवर्तन अपना वास्तविक जनतांत्रिक रूप तब तक नहीं ग्रहण कर सकता, जब तक कि सामाजिक परिवर्तन न हो। इसलिए जगजीवन राम सामाजिक क्रांति की अनिवार्यता महसूस कर रहे थे।

वर्ण और जाति के विरुद्ध बाबू जगजीवन राम का संघर्ष अस्मितावादी राजनीति के दायरे में नहीं, बल्कि राष्ट्रीय दायरे में था। अस्मितावादी राजनीति जाति और वर्ण को बनाए और बचाए रखकर ही हो सकती है। उनके लिए जनतंत्र एक मूल्य व्यवस्था है। इस मूल्य व्यवस्था की अनिवार्य शर्त गैर बराबरी की समाप्ति है। यही सोच बाबू जगजीवन राम की दृष्टि को व्यापक मानवीय आयाम देती है। इसलिए वह सोच पाते हैं कि अस्पृश्यता से सिर्फ अस्पृश्यों को ही नहीं, पूरे समाज को नुकसान हुआ है। इसलिए यह एक राष्ट्रीय-समस्या है। वह मानते थे कि पूरे राष्ट्र को इस समाधान में जुटना होगा।

(ये लेखक के अपने विचार हैं)